दलित कहानी संचयन

चयन एवं सम्पादन

रमणिका गुप्ता

'जाति म पुच्छ...चरण पुच्छ' वाली भारतीय विचारधारा के समानान्तर मनुवादी वर्ण व्यवस्था और सदियों से अस्पृश्यता का शिकार भारतीय दलित समाज—पिछली शताब्दी में मिली आज़ादी के बाद—एक नए सामाजिक अभियान में बड़ी मज़बूती से खड़ा हुआ है। सदियों की प्रताड़ना, उपेक्षा, सवर्णों द्वारा शोषण और सामन्तवादी मानसिकता से जूझते इस अभिशप्त वर्ग ने अब आर-पार की लड़ाई शुरू कर दी है, ताकि अपने बलबूते पर—अपने मूल्यों पर, इसे सर्वथा नई पहचान मिले, सम्मान मिले।

संस्कृति और साहित्य में नया विमर्श और प्रस्थान-बिन्दु लेकर उपस्थित दलित रचनाकारों ने अपने अनुभव की ज़मीन पर ही अपनी रचनाओं को मुखर किया है—बिना किसी लाग-लपेट के और सौन्दर्यवादियों के स्वीकृत मूल्यों और अवधारणाओं की परवाह किए।

दलित कहानी संचयन छह भारतीय भाषाओं में लिखित अड़तालीस कहानियों का प्रतिनिधि संकलन है। ये कहानियाँ दलित वर्ग के लेखकों द्वारा रचित ऐसी रचनाएँ हैं, जो दलित जीवन की यातना, पीड़ा, आक्रोश, प्रतिरोध और संघर्ष की संवेदना से पगी हैं। भीतर और बाहर दोनों तरफ़ जूझनेवाली इन कहानियों का मुख्य आधार कला या शैली नहीं, वरन् भाषा और कथ्य हैं। अमानवीय ज़ुल्म, अत्याचार और सहनशीलता को वाणी देनेवाली ये कहानियाँ अपना एक अलग ही सौन्दर्य-शास्त्र गढ़ती दिखाई देती हैं। इन कहानियों में दलित जीवन के कई कोण हैं—जीवन से जूझने के, ज़िन्दा रहने के, पीड़ा सहने के और उससे उबरने के।

समय के लम्बे अन्तराल को छूती प्रस्तुत संकलन की कहानियों में दलित चेतना के उदय से लेकर संकल्प बनने तक का विकास उजागर होता है। 'गुलाम हूँ मैं' का अहसास डंक मारता दिखता है तो उस अहसास से मुक्ति की छटपटाहट भी कुलबुलाती नज़र आती है और नज़र आता है यह सपना, "जाति नहीं, मनुष्य हूँ मैं—समाज का साझेदार हूँ मैं—औरों की तरह मेरी भी जीने की शर्तें हैं।" यही मुक्ति-स्वप्न इन कहानियों को दिशा देता है। कहीं वह 'अप्पदीपो भव' बनकर रोशन हो जाता है और अँधेरे को काटने लगता है तो कहीं संगठित होकर योजना बनाता है और कहीं सीधे संघर्ष में उतरकर राह तैयार करता है।

ISBN : 81-260-1700-7
मूल्य : दो सौ पचास रुपये

रमणिका गुप्ता
अध्यक्ष, रमणिका फाउंडेशन
आवास–ए–221, ग्राउंड फ्लोर,
डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली–110024
फोन : 011–46577704

पहली दलित कहानी का जन्म

ऐसे तो कहानी की उत्पत्ति तब हुई होगी, जब मनुष्य ने भाषा गढ़ ली होगी। एक तरफ़ वह आदि मनुष्य प्रकृति से जूझता रहा होगा, दूसरी तरफ़ उसी पर निर्भर या उसी के सहारे जीवित था। सम्भवतः प्रकृति के साथ उसका मित्र और शत्रु, संरक्षक और उपभोक्ता, प्रेम और घृणा का यह रिश्ता उसके मनुष्य बनने के साथ ही क़ायम हो गया था। प्रेम ने जहाँ उसे कल्पना दी और दी उम्मीदें, वहीं घृणा ने उसे सच्चाइयों का बोध कराया। प्रकृति की विध्वसंक शक्तियों के अहसास ने उसे उन पर विजय पाने की योजना के लिए प्रेरित किया और योजना के लिए उसने लिया कल्पना का सहारा। प्रकृति से जीवन पाकर वह ज़िन्दा था, यह भी यथार्थ था और प्रकृति ही उसका विनाश करती थी, यह सच भी वह जान गया था। जब इस यथार्थ के अनुसार उसने अपनी सन्तति या संगिनी को प्रकृति के सन्दर्भ में अथवा प्रकृति के प्रत्याशित-अप्रत्याशित स्वभाव के कारण घटी घटनाओं और हादसों को अपनी आप-बीती बताना शुरू किया होगा, सम्भवतः तभी कहानी का जन्म हुआ होगा। कविता की तरह कहानी एकाएक नहीं फूटा करती। कहानी तो घटा करती है यानी घटती है, इसलिए कहानी तो विकसित हुई होगी, गढ़ी और तराशी भी गई होगी। आदिम मनुष्य की कहानी भी घटी थी जो एक सामूहिक कथा थी या कहें कि आदिम गाथा थी, जो शुरू में किसी एक भौगोलिक क्षेत्र में समानरूपा रही होगी। पर अन्न की खोज में निकला मनुष्य जब पत्थर-युग से लौह-युग पार करता हुआ सभ्यता के युग में पहुँचा, तो वह अपने लिए कई इतिहास-मिथकों, स्मृतियों, विचारों, धारणाओं, आस्थाओं-विश्वासों एवं शक्ति-केन्द्रों का निर्माण कर चुका था, जिन पर शायद वह आस्था रखने लगा था। जब वह प्रकृति से जूझा होगा तो उसने तर्क किए होंगे, तरकीब लड़ाई या योजना बनाई होगी, पर जब वह प्रकृति पर मुग्ध होकर अभिभूत, विस्मित और चकित हुआ होगा तो चमत्कृत हो गया होगा, जिसने उसमें एक आस्था पैदा करने के साथ-साथ डर भी पैदा किया होगा।

कालान्तर में, सभ्यता की यात्रा में मनुष्य खेमों में बँटने लगा। फिर खेमों में होड़ लगी, युद्ध हुए, जय-पराजय हुई और विजेता खेमा ख़ुद को दूसरे से श्रेष्ठ समझने लगा और वह श्रेणियों में बँट गया। समानता एवं सामूहिकता ख़त्म होने लगी। जिस युग में सामूहिकता ख़त्म होने पर वह किसी व्यक्ति का ग़ुलाम और दास बना

होगा—उसी दिन 'स्वामी' का जन्म हुआ, शायद पहली दलित कहानी भी उसी दिन घटी होगी। चूँकि 'दासता' ही दलित अवधारणा की जननी है। यह दासता उसकी पराजय के कारण हो या उसके रंग के कारण अथवा जन्म, जाति या क़बीलों के स्तर की भिन्नता के कारण, इसका सतत विकास होता चला गया। दासता की मानसिकता के विकास के साथ-साथ समानता और सामूहिकता समाप्त होती गईं। समूह पर भी व्यक्ति क़ाबिज़ होने लगा। वे सैनिक के रूप में राजा के, भक्त के रूप में भगवान के, अनुयायी के रूप में धर्म के और शिष्य के रूप में गुरु के दास बन गए। श्रेष्ठ लोगों की जमातें बनने की प्रक्रिया में ही हीन-भावना का जन्म हुआ होगा, चूँकि, श्रेष्ठता की यह प्रक्रिया सह-अस्तित्व से नहीं, कमतर और कमज़ोर को नष्ट करके, निम्न-वर्गों की क़ीमत पर उच्च-वर्गों के निर्माण से सम्पन्न होती है। न जाने कितनी कहानियाँ जन्मीं और मरी होंगी इस दौर में! विरोध का स्वर ही दलित कहानी का स्वर और ताक़त होता है, किन्तु सभ्यता का मूल मन्त्र है—'विरोध को ख़त्म करना', इसलिए अन्याय 'प्रायश्चित्त' का पर्याय बना दिया गया और दुःख पिछले जन्म का 'कर्मफल'। यही धारणा दलित कहानी की पोषक बनी और उनकी निरन्तरता का कारण भी!

इस धारणा को माननेवाला श्रेष्ठ समूह जब सत्ता के शिखर पर था तो 'राम' नाम के एक राजा हुए थे। वे मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते थे। वे उस भेद-मूलक व्यवस्था के भयंकर पोषक थे। उनके गौरव को चार चाँद लगानेवाली अपनी सवर्ण जाति के वर्चस्व के रक्षार्थ ही राम ने शम्बूक की हत्या की थी, ताकि शम्बूक सवर्ण समाज की तरह ज्ञान अर्जित न कर पाए, उनके समकक्ष न बन पाए, ताकि ब्राह्मणवादी सवर्ण-व्यवस्था का वर्चस्व शम्बूकों की जमात पर क़ायम रहे। दरअसल सवर्ण वाङ्मय में शम्बूक-वध की चर्चा राम के गुणगान का एक हिस्सा है, जो उनकी कर्त्तव्य-परायणता और राज-धर्म निभाने की प्रशंसा में लिखी गई थी। यह कथा ब्राह्मण-वर्ग के हितों के रक्षार्थ शम्बूक की हत्या को उचित ठहराती है यानी ब्राह्मण-सत्ता के हितों को सुरक्षित रखने के लिए शम्बूक-प्रजा के वध की एक वीरगाथा है यह। कैसा अद्भुत षड्यन्त्र था यह! राजसत्ता और वर्चस्व क़ायम रखने की योजनाबद्ध साज़िश—जिसे लोग साज़िश नहीं—वीरता कहें, कर्त्तव्य-परायणता कहें! सम्भवतः तभी पैदा हुई यह दलित कहानी। हाँ! दलित कहानी, जो सदियों बाद मानववादी सोच से परिभाषित हुई—जिसका नायक है शम्बूक!

प्रथम कविता का जन्म अगर वाल्मीकि के मन में क्रौंच-वध से फूटी करुणा के कारण हुआ तो उसी युग में वाल्मीकि के नायक राम ने अपने जातीय दम्भ से शम्बूक की हत्या करके, भय और आतंक से दलित कहानी का सूत्रपात किया। इस प्रकार हुई थी विरोधी स्वर की हत्या, जिसे शम्बूक का विरोधी स्वर, आनेवाली सदियों को प्रेरित करता और परिवर्तन के संकल्प की याद दिलाता रहा है।

दलित कहानी में दो गुणों का होना अति आवश्यक है—एक भेदमूलक व्यवस्था का विरोध और दूसरा परिवर्तन का संकल्प। ये दोनों गुण शम्बूक-कथा में तीव्रता से मौजूद हैं, भले इन गुणों को आज परखा-पहचाना जा रहा है। इसी प्रकार हर युग में दलित कहानियाँ घटती रही हैं, भले इसे लिखनेवाले व्यवस्था के पोषक ही थे। जब परखने-पहचाननेवाले मिल जाएँ तो घटनाएँ सच उगल ही देती हैं। भले वाङ्मय उन व्याख्याओं या परखों को नकारता रहा हो, पर लोक साहित्य और किंवदन्तियों में सच कहा जाता रहा है। गौरवमयी भाषा, अलंकार और छन्दों से छद्म को छिपाने के लाख जतन किए जाने पर भी उन कथाओं की सत्यता छिपाई नहीं जा सकी। यह सही है कि बाबा साहब आम्बेडकर ने सही रूप में इन कथाओं को देखने-परखने की दृष्टि दी, अन्यथा अपने ही ख़िलाफ़ लिखी इन कथाओं को इस व्यवस्था के रचयिता समाज के साथ-साथ वह समाज भी रस लेकर, सुनता-सुनाता था और राम-जैसे नायकों के गुणों पर मुग्ध होकर झूमता था जो इसका खुद शिकार था।

महाभारत में दोणाचार्य ने गुरु के शीर्ष स्थान पर बैठकर एक अन्य महत्त्वपूर्ण दलित कथा को जन्म दिया था, एकलव्य का अँगूठा ज़बरन कटवाकर, ताकि क्षत्रिय-पुत्र अर्जुन से शूद्र-पुत्र एकलव्य आगे न बढ़ जाए। सवर्ण-इतिहास ने इसे एकलव्य का त्याग बताकर सदियों तक गुरु के छद्म को गौरवान्वित किया। लेकिन डॉ. आम्बेडकर ने जो तर्क की कसौटी दलित साहित्यकार के हाथों में थमा दी तो सारा का सारा गौरव ढह गया—छद्म बेनक़ाब हो गया और एक और बड़ी कहानी, दलित-कहानी वाङ्मय के पृष्ठों पर उभर आई जो पूरे ढाँचे को चूर-चूर करने की क़ुव्वत रखती थी। पर इसे सुनने, पढ़ने और इसका सच समझने में युगों का अन्तराल बीच में खड़ा है। हालाँकि मध्य-प्रदेश के जंगलों में आज भी यह कथा कही जाती है, जिसमें गुरु द्रोण के अन्याय का ज़िक्र आता है। एक कथा तो यह भी है कि अँगूठा कट जाने के बाद एकलव्य पाँव के अँगूठे से तीर चलाने लगा और अचानक गुरु द्रोण वहाँ पहुँचे तो उन्होंने एक कुत्ते का मुँह वाणों से भरा देखा। तत्काल वे जान गए कि यह एकलव्य ही हो सकता है। ये लोक-गीत और लोक-कथाएँ गुरु द्रोण पर व्यंग्य ही नहीं, बल्कि करारी चोट भी करते हैं। यह विडम्बना है कि जन-मानस ने तो द्रोण के छल-कपट को पहचाना, पर वाङ्मय के रचयिता साहित्यकार, इस सच को नकारते रहे। बस यह दलित कथा जन-मानस को भीतर-ही-भीतर सालती रही और आज तो हर दलित के लिए यह एक प्रेरक कथा है।

रज़िया अपने हब्शी गुलाम से प्रेम करती थी। वह अपने ही सरदारों द्वारा इसलिए मार दी गई कि वह रानी थी और उसका प्रेमी एक हब्शी। काले आबनूसी रंग का जीव, मनुष्यता का दावा भला कैसे कर सकता था? शहंशाह-कुल में जन्मी रज़िया से प्रेम की कल्पना करना ही उसका अपराध था और गुलाम समेत रज़िया की हत्या कर दी गई, यह एक और दलित कहानी थी। रज़िया द्वारा किए गए परम्परा के